मन्दोदरी-विलाप, रावण की अन्त्येष्टि क्रिया

चौपाई :

*** पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥ जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥1॥

भावार्थ:-

पति के सिर देखते ही मंदोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ीं और उस (मंदोदरी) को उठाकर रावण के पास आईं॥1॥

*** पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा॥ उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥2॥

भावार्थ:-

पति की दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं। उनके बाल खुल गए, देह की संभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकार से छाती पीटती हैं और रोती हुईरावण के प्रताप का बखान करती हैं॥2॥

*** तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥ सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥3॥

भावार्थ:-

(वे कहती हैं-) हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि, चंद्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है!॥3॥

*** बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा॥ भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नईं॥4॥

भावार्थ:-

वरुण, कुबेर, इंद्र और वायु, इनमें से किसी ने भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराजको भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथ की तरह पड़े हो॥4॥

*** जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥ राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥5॥

भावार्थ:-

तुम्हारी प्रभुता जगत् भर में प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों औरकुटुम्बियों के बल का हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। श्री रामचंद्रजी के विमुख होने से तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोने वाला भी न रह गया॥5॥

*** तव बस बिधि प्रचंड सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥ अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥6॥

भावार्थ:-

हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे, किन्तु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओंको गीदड़ खा रहे हैं। राम विमुख के लिए ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है)॥6॥

*** काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥7॥

भावार्थ:-

हे पति! काल के पूर्ण वश में होने से तुमने (किसी का) कहना नहीं माना और चराचर के नाथ परमात्मा को मनुष्य करके जाना॥7॥

छंद :

*** जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं। जेहि नमत सिवब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥ आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तवतनु अयं। तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

भावार्थ:-

दैत्य रूपी वन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप साक्षात् श्री हरि को तुमने मनुष्य करके जाना। शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान् को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्मसे ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय रहा! इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्री रामजी ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

दोहा :

*** अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन। जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥104॥

भावार्थ:-

अहह! नाथ! श्री रघुनाथजी के समान कृपा का समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान् ने तुमको वह गति दी, जो योगि समाज को भी दुर्लभ है॥104॥

चौपाई :

*** मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥ अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी॥1॥

भावार्थ:-

मंदोदरी के वचन कानों में सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुखमाना। ब्रह्मा, महादेव, नारद

और सनकादि तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्मा के तत्त्व को जानने और कहने वाले) श्रेष्ठ मुनि थे॥1॥

*** भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥ रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मनु दुख भारी॥2॥

भावार्थ:-

वे सभी श्री रघुनाथजी को नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गए और अत्यंत सुखी हुए। अपने घर की सब स्त्रियों को रोती हुई देखकर विभीषणजी के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गए॥2॥

*** बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥ लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥3॥

भावार्थ:-

उन्होंने भाई की दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु श्री रामजी ने छोटे भाई को आज्ञा दी (कि जाकर विभीषण को धैर्य बँधाओ)। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया। तब विभीषण प्रभु के पास लौट आए॥3॥

*** कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥ कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥4॥

भावार्थ:-

प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा (और कहा-) सब शोक त्यागकर रावण की अंत्येष्टि क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मानकर और हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषणजी ने विधिपूर्वक सब क्रिया की॥4॥

दोहा :

*** मंदोदरी आदि सब देह तिलांजलि ताहि। भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥105॥

भावार्थ:-

मंदोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावण को) तिलांजलि देकर मन में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का वर्णन करती हुई महल को गईं॥105॥

विभीषण का राज्याभिषेक

चौपाई :

*** आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥ तुम्ह्कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥1॥ सब मिलि जाहु बिभीषन साथा।सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥ पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुजपठावउँ॥2॥

भावार्थ:-

सब क्रिया-कर्म करने के बाद विभीषण ने आकर पुनः सिर नवाया। तब कृपा के समुद्र श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को बुलाया। श्री रघुनाथजी ने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील जाम्बवान् और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। पिताजी के वचनों के कारण मैं नगर में नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाई को भेजता हूँ॥1-2॥

*** तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥ सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥3॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलक की सारी व्यवस्था की। आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की॥3॥

*** जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥ तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥4॥

भावार्थ:-

सभी ने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाए। तदनन्तर विभीषणजी सहित सब प्रभु के पास आए। तब श्री रघुवीर ने वानरों को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया॥4॥

छंद- :

*** किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो। पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥ मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं। संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

भावार्थ:-

भगवान् ने अमृत के समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषण ने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकों में नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभ कीर्ति को परम प्रेम के साथ गाएँगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसार का पार पा जाएँगे।

दोहा : प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज। बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥106॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन कानों से सुनकर वानर समूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरणकमलों को पकड़ते हैं॥106॥

हनुमान्‌जी का सीताजी को कुशल सुनाना, सीताजी का आगमन और अग्नि परीक्षा

चौपाई :

*** पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥ समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥1॥

भावार्थ:-

फिर प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुला लिया। भगवान् ने कहा- तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ॥1॥

*** तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरीं निसाचर धाए॥ बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥2॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी नगर में आए। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिए) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान्‌जी की पूजा की और फिर श्री जानकीजी को दिखला दिया॥2॥

*** दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥ कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥3॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने (सीताजी को) दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहचान लिया कि यह वही श्री रघुनाथजी का दूत है (और पूछा-) हे तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?॥3॥

*** सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥ अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥4॥

भावार्थ:-

(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! कोसलपति श्री रामजी सब प्रकार से सकुशल हैं। उन्होंने संग्राम में दस सिर वाले रावण को जीत लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सीताजी के हृदय में हर्ष छा गया॥4॥ छंद- :

*** अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा। का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥ सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं। रन जीति रिपु दल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

भावार्थ:-

श्री जानकीजी के हृदय में अत्यंत हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं- हे हनुमान्! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी

(समाचार) के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है! (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! सुनिए, मैंने आज निःसंदेह सारे जगत् का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु को जीतकर भाई सहित निर्विकार श्री रामजी को देख रहा हूँ।

दोहा : सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत। सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥107॥

भावार्थ:-

(जानकीजी ने कहा-) हे पुत्र! सुन, समस्त सद्‌गुण तेरे हृदय में बसें और हे हनुमान्‌! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझ पर प्रसन्न रहें॥107॥

चौपाई : अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥ तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥1॥

भावार्थ:-

हे तात! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ। तब श्री रामचंद्रजी के पास जाकर हनुमान्‌जी ने जानकीजी का कुशल समाचार सुनाया॥1॥

*** सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥ मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥2॥

भावार्थ:-

सूर्य कुलभूषण श्री रामजी ने संदेश सुनकर युवराज अंगद और विभीषण को बुला लिया (और कहा-) पवनपुत्र हनुमान् के साथ जाओ और जानकी को आदर के साथ ले आओ॥2॥

*** तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता॥ बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥3॥

भावार्थ:-

वे सब तुरंत ही वहाँ गए, जहाँ सीताजी थीं। सब की सब राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं। विभीषणजी ने शीघ्र ही उन लोगों को समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकार से सीताजी को स्नान कराया,॥3॥

*** बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए॥ ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥4॥

भावार्थ:-

बहुत प्रकार के गहने पहनाए और फिर वे एक सुंदर पालकी सजाकर ले आए। सीताजी प्रसन्न होकर सुख के धाम प्रियतम श्री रामजी का स्मरण करके उस पर हर्ष के साथ चढ़ीं॥4॥ बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥ देखनभालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥5॥

भावार्थ:-

चारों ओर हाथों में छड़ी लिए रक्षक चले। सबके मनों में परम उल्लास (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिए आए, तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े॥5॥ कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥ देखहुँ कपिननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥6॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर ने कहा- हे मित्र! मेरा कहना मानो और सीता को पैदल ले आओ, जिससे वानर उसको माता की तरह देखें। गोसाईं श्री रामजी ने हँसकर ऐसा कहा॥6॥

*** सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥ सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥7॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गए। आकाश से देवताओं ने बहुत से फूल बरसाए। सीताजी (के असली स्वरूप) को पहिले अग्नि में रखा था। अब भीतर के साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं॥7॥

दोहा :

*** तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद॥108॥

भावार्थ:-

इसी कारण करुणा के भंडार श्री रामजी ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं॥108॥

चौपाई :

*** प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥ लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र श्री सीताजी बोलीं- हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो॥1॥ सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥ लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥2॥

भावार्थ:-

श्री सीताजी की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकरलक्ष्मणजी के नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भर आया। वे हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ कह नहीं सकते॥2॥ देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥ पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥3॥

भावार्थ:-

फिर श्री रामजी का रुख देखकर लक्ष्मणजी दौड़े और आग तैयार करके बहुत सी लकड़ी ले आए।

अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर जानकीजी के हृदय मेंहर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ॥
*** जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥ तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥4॥
भावार्थ:-
(सीताजी ने लीला से कहा-) यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में श्री रघुवीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर) मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जाएँ॥4॥

छंद- :
*** श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली। जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥ प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे। प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥1॥
भावार्थ:-
प्रभु श्री रामजी का स्मरण करके और जिनके चरण महादेवजी के द्वारा वंदित हैं तथा जिनमें सीताजी की अत्यंत विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपति की जय बोलकर जानकीजी ने चंदन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया।प्रतिबिम्ब (सीताजी की छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में जल गए। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं॥1॥
*** धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो। जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥ सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली। नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥2॥
भावार्थ:-
तब अग्नि ने शरीर धारण करके वेदों में और जगत् में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें श्री रामजी को वैसे ही समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थीं। वे सीताजी श्री रामचंद्रजी के वाम भाग में विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा अत्यंत ही सुंदर है। मानो नए खिले हुए नीले कमल के पास सोने के कमल की कलीसुशोभित हो॥2॥